नियम पूर्वक प्रत्येक चतुर्दशी को पाठ करने वाले मुफ्त प्राप्त करें

श्री जिनाय नम

अन्तिम केवली भगवान तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी के द्वारा जो वाणी प्रसारित हुई, उसका विभाजन गणधर देव श्री गौतम स्वामी ने बारह अंगों में किया उन बारह अंगों को द्वादशांग वाणी के नाम से बोला जाता है। उनके भिन्न भिन्न नाम इस प्रकार हैं।

(१) आचारांग—जिसमे मुनियो का आचरण है। जिसके १८००० पद हैं।

(२) सूत्र कृतांग—इसमे सूत्र रूप से ज्ञान और धार्मिक रीतियों का वर्णन है। जिसमे ३६००० पद हैं।

(३) स्थानांग—एक से अनेक भेद रूप जीव पुद्गलादि का कथन है। इसके पद ४२००० हैं।

(४) समवायांग—इसमे द्रव्यादि की अपेक्षा एक दूसरे मे सहयोग का कथन है। इसमे १६४००० पद हैं।

(५) व्याख्या प्रज्ञप्ति—इसमे ६०००० प्रश्नो के उत्तर है। जिसके २२८० ० पद हैं।

(६) ज्ञात धर्म कथांग—इसमे जीवादि द्रव्यों का स्वभाव रत्नत्रय व दशलक्षण रूप धर्म का स्वरूप तथा सांसारिक—नाना पुरुषों सम्बन्धी धर्म कथाओं का निरूपण है। जिसमे ५५६०००० पद है।

(७) उपासकाध्ययनांग—इसमे गृहस्थो का चरित्र है। जिसके ११७० ०० पद है।

(८) अन्त कृद्दशांग—इसमे प्रत्येक तीर्थंकर के समय मे दस-दस मुनि घोर उपसर्ग सहकर केवली भये उनका चरित्र है। २३२८०००० पद हैं।

(९) अनुत्तरौपपादिक दशांग—इसमें प्रत्येक तीर्थंकर के समय जो दस-दस साधु उपसर्ग सहकर अनुत्तर विमानों में जन्मे उनकी कथा है। ९२४४००० पद हैं।

(१०) प्रश्न व्याकरणांग—इसमें त्रिकाल सम्बन्धी अनेकानेक प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देने की विधि और उपाय बतान रूप व्याख्यान तथा लोक और शास्त्र में प्रचलित शब्दों का निर्णय है। जिसके पद ९३१६०००० हैं।

(११) विपाक सूत्रांग—इसमें कर्मों के बंध व फलादि का कथन है। जिसके १८४००००० पद हैं।

(१२) दृष्टि प्रवादांग—इसमें ३६३ मतों का निरूपण व खंडन है। पूर्व आदि का कथन है। इसमें ८६८५६००५ पद हैं।

इन द्वादशाङ्ग वाणी के कुछ सार रूप अंशों को जैन आचार्यों द्वारा चार प्रकार की श्रेणी में विभाजन कर लिखित रूप देकर ताड़ पत्रों आज पत्रों पर शास्त्र बनाये। जिनको क्रमानुसार पढ़ने की आज्ञा दी उनके नाम हैं—प्रथमानुयोग-करणानुयोग-चरणानुयोग द्रव्यानुयोग—इन ही चार प्रकार के ग्रंथों द्वारा जनागम का ज्ञान होता है। आज्ञानुसार पढ़ने और श्रद्धा करने से सच्चे ज्ञान की प्राप्ति होती है। जिस ज्ञान का श्रद्धान होने से मोक्ष पद को पा लेना सुगम होता है।

आठ कर्म और उनके भेद
मूल कर्म आठ प्रकार के होते हैं

(१) ज्ञानावरण—जो आत्मा के ज्ञान गुण को ढके।

(२) दर्शनावरण—जो आत्मा के दर्शन गुण को ढके (सच्चे श्रद्धान को रोकना)।

(३) वेदनीय—जो संसारी सुख-दुख की सामग्री जोड़कर सुख दुख का भोग करावे।

(४) मोहनीय—जो आत्मा के श्रद्धान और चारित्र की (शान्ति) को बिगाड़े।

(५) आयु—जो शरीर म आत्मा का निश्चित समय तक नियत्रण (कैद) रखे।

(६) नाम—जो शरीर की अच्छी-बुरी रचना (रूप-कुरूप) करें।

(७) गोत्र—जो ऊच-नीच कुल म जन्म करावें।

(८) अन्तराय—जो लाभ भोग, उपभोग दान उत्साह मे विघ्न उत्पन्न करे।

इन आठो क न० १ २ ३ ८ चार कर्मों को घातिया कर्म क नाम से प्रसिद्ध किया है। जो आत्मा क सच्चे गुणों की घात करते रहते हैं। शेष चार अघातिया कहलाते हैं। जो अरिहन्त त्व क भी सिद्ध अवस्था प्राप्त नहीं होने तक साथ नहा छोडते हैं। इन चार अघातिया कर्मों का काय बाहरी सामग्री का जोडना है। यह तो आयु कर्म के समाप्त होते ही साथ-साथ चले ही जाते हैं। कारण इनसे आत्मा का कुछ बिगाड होने की सभावना नही। मात्र आयु कर्म के सहचर होने के कारण उसका साथ निभाते हैं।

योनि (पर्याय अथवा जन्म लेने क स्थान)

समस्त ससारी जीवा की ८४००००० चौरासी लाख योनियाँ होती हैं। जिनका विवरण सक्षेप म नीचे लिखे अनुसार है।

नित्य निगोद की ७ लाख। इतर निगोद की ७ लाख। अन्य वनस्पतियों की १० लाख। दो इन्द्रिय जीवों की २ लाख। तीन इन्द्रिय जीवों की २ लाख। चार इन्द्रिय जीवो की २ लाख। देवो की ४ लाख। नारकियों की ४ लाख। पचेन्द्रिय तिर्यचो की ४ लाख। मनुष्यो की १४ लाख (उत्पत्ति स्थान) तो ससारी जीव जो नाना लाख म भ्रमण करते हैं अगणित प्रकार के हैं।

उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है वास्तव म जल एक ही प्रकार का है परन्तु उसको भिन्न भिन्न प्रकार के पदार्थ तथा पृथ्वी के सयोग मिलने से अनेक प्रकार का विख्यात होता है। कोई मीठा कोई खारा, कडवा गधक से गम बर्फ से ठडा हलका भारी हाजिम रोगनाशक रोग कारक, सुगधित,

दुर्गंधित काला सफेद—जैसे त्रिवेणी के संगम पर तिरंगा आदि आदि। जैसा संयोग उसके अनुसार हो जाता है। परन्तु शुद्ध जल की दृष्टि से जल एक समान है।

इसी प्रकार समस्त जीव (जीव द्रव्य दृष्टि) से तो एक समान हैं। परन्तु भाग्यवश उनको जैसा बाहरी निमित्त साधन मिलता है उसी प्रकार शक्ति धारक जीवों में परस्पर अन्तर हो जाता है।

हाथी चिवटी देव मनुष्य सभी की आत्मा में कोई अन्तर नहीं। परन्तु भाग्यवश कर्मानुसार शरीर बल ज्ञान वैभव में महान अन्तर होता है। मनुष्य के भी रंग रूप चाल-ढाल बोल निधन धनी मूर्ख विद्वान सभ्य असभ्यता में अनेक प्रकार हैं—यह अन्तर का कारण कर्म भाग्य किस्मत तकदीर कुछ भी कह लो बात एक ही है।

जीव आत्मा का मुख्य गुण ज्ञान है। अथवा आत्मा तो कोरा शुद्ध ज्ञान ही ज्ञान है। जो प्रत्येक प्राणी की आत्मा में उसके कर्म पर्याय अनुसार पाया ही जाता है। चार घातिया कर्मों का नाश होते ही शुद्ध केवल ज्ञान की प्राप्ति स्वमेव हो जाती है उसी अवस्था को केवली अरिहंत अवस्था कहते हैं।

इन आठों कर्म की १४८ प्रकृतियों का विस्तार

क्रम	नाम	भेद संख्या
१	ज्ञानावर्णी	५ प्रकार
२	दर्शनावर्णी	६
३	वेदनीय	२
४	मोहनीय	२८
५	आयु	४
६	नाम	९३
७	गोत्र	२
८	अन्तराय	५
	एक सौ अड़तालीस—जोड़ कुल	१४८ प्रकृतियां

आठों कर्म की उत्कृष्ट स्थिति बंध का काल निम्न प्रकार है—

१	ज्ञानावर्णी—कर्म की आयु काल	३०	कोड़ा कोड़ी	सागर
२	दर्शनावर्णी— ,,	३०	,,	,,
३	वेदनीय— ,,	३०		
४	मोहनीय— ,,	७०		,,
५	आयु—	३३	,,	
६	नाम—	२०	,,	,,
७	गोत्र—	२०		,,
८	अन्तराय— ,,	३०		,,

करोड़-कोड़ी का अर्थ करोड़×करोड़=कोड़ा कोड़ी

सागर का अर्थ है असंख्यात वर्ष अनगिनत जैसे सागर के जल की बूँद गिनना असम्भव है। इसी तरह सागर की अवधी तो केवल ज्ञान का विषय है केवली ही जानें। और पल्य का अर्थ है—गड्ढा। जो सागर के मुकाबले में बहुत ही कम है परन्तु उसका इस काल के जीव गणना करने में असमर्थ ही हैं—प्रथम स्वर्ग के सौधर्म इन्द्र की आयु २ सागर और उसकी शचि इन्द्राणी की आयु केवल ५५ पल्य की। जो इन्द्र की २ सागर की आयु में शचि इन्द्राणी ४० नील की संख्या में हो जाती है। इससे सागर और पल्य का अन्तर समझ लो। यह आठों कर्म वर्गणाएं अपनी स्थिति से अधिक कर्या आत्मा के साथ नहीं रह सकती है। अवश्य ही समय पूरा होने पर झड़ जावेगी।

कुछ ही पीछे मूल कर्म के आठ भेद बताये गये। उन आठ मूल कर्मों की शाखा प्रतिशाखा की १४८ प्रकृतियाँ भी बताई गई। अब उनके नाम का विवरण संक्षेप में पढ़िये।

ज्ञानावरण के पाँच भेद

(१) मति ज्ञानावरण—पाँचों इन्द्रियों-मन के द्वारा पदार्थों के ज्ञान को आवरण (ढकने) वाला।

(२) श्रुत ज्ञानावरण—मानसिक ज्ञान को ढकने वाला।

(३) अवधि ज्ञानावरण—बिना मन और इन्द्रियों के आत्म शक्ति से मूर्तिक पदार्थों को जानने में बाधक होना।

(४) मन पर्ययज्ञानावरण—बिना इन्द्रिया मन के सहारे आत्म शक्ति से दूसरे के मन के विषय को जानने में बाधक होना।

(५) केवल ज्ञानावरण—त्रिलोक के त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को एक साथ जानने में बाधक होना।

दर्शनावरण के नौ भेद

(१) चक्षु दर्शनावरण—नेत्रों द्वारा ज्ञान में प्रथम होने वाला निराकार उपयोग को ढके।

(२) अचक्षु दर्शनावरण—नेत्रों के अतिरिक्त अन्य इन्द्रियों की जानकारी से प्रथम निराकार प्रतिभास में बाधक।

(३) अवधि दर्शनावरण—अवधि ज्ञान के पहले होने वाला निराकार उपयोग में बाधक।

(४) केवल दर्शनावरण—केवल ज्ञान के साथ होने वाला निराकार उपयोग में बाधक।

(५) निद्रा—जिसके उदय से कुछ नींद आती हो।

(६) निद्रा निद्रा—जिसके उदय से नींद से जगने पर पुन नींद आती हो।

(७) प्रचला—जिसके उदय से बैठे-बैठे ऊंघ आती रहे।

(८) प्रचला प्रचला—जिसके उदय से सोते हुये मुख से [illegible] गिरे। हाथ पैर भी चलते रहे।

(९) स्त्यानगृद्धि—जिसके उदय से नींद में [illegible] पुन सो जाय।

वेदनीय के दो भेद

(१) साता वेदनीय—जो साता भोग कराय (दर्शन अनि)

(२) असाता वेदनीय—जो दुख पीड़ा का भोग कराय।

मोहनीय की २८ प्रकृतियाँ (भेद)

दर्शन मोहनीय की तीन

(१) मिथ्यात्व—जिसके उदय से सच्चे तत्व धर्म का श्रद्धान न होने दे।

(२) सम्यग्मिथ्यात्व—जिसके उदय से सत्य असत्य मिश्रित तत्व श्रद्धा हो।

(३) सम्यक्त्व प्रकृति—जिससे सत्य श्रद्धान धर्म मल अगाढ दोष उत्पन्न करने वाला कर्म।

चारित्र मोहनीय के मूल दो भेद हैं—

१ कषाय—१६ भेद।

२ नो कषाय—९ भेद।

कुल चारित्र मोहनीय की १६+९=२५ प्रकृतियां होती हैं

(१) अनन्तानुबंधी क्रोध—जिससे सम्यक् दर्शन और स्वरूप से आचरण रूप चारित्र का घात हो इसकी मर्यादा पत्थर की लकीर और इसकी रेखा के समान अमिट सी है जो दीर्घकाल तक फल देती है।

(२) अनन्तानुबंधी मान—पत्थर के समान नहीं झुकने वाला अभिमान।

(३) अनन्तानुबंधी माया—बांस की जड़ समान बहुत गहरा उलझा हुआ छल कपट (मायाचारी)।

(४) अनन्तानुबंधी लोभ—मजीठ के रंग समान नहीं छूटने वाले रंग समान लालच—इन कषायों के उदय से स्वरूपाचरण चारित्र तथा सम्यग्दर्शन होने का अभाव होता है।

(१) अप्रत्याख्यानावरण क्रोध—जिसमे श्रावक गृहस्थ के व्रत न हो सकें। इस क्रोध की अवधि इतनी होती है जैसे मन में हल चलाने से कुछ निकाले हैं और वर्षा कई साल तक होने पर भूमि समतल होती है—

२+३+४=अप्रत्याख्यानावरण मान+माया+लोभ—इन तीनों को भी अनन्तानुबंधी से कुछ ही कम समझना चाहिए।

(१) प्रत्याख्यानावरण क्रोध—इस कर्म के उदय से साधु के व्रत पालन करने में बाधा पड़ती है—ऐसे ही और

२+३+४=प्रत्याख्यानावरण-मान+माया+लोभ इन तीनों का प्रभाव पड़ता है।

(१) संज्वलन क्रोध—जिसके प्रभाव से पूर्णतया यथाख्यात चारित्र का पालन नहीं हो सके। इसी के समान तीनों।

२+३+४=संज्वलन-मान+माया+लोभ=का प्रभाव जानना चाहिए यह कषाय मंदतम है जो मुनियों को ही पाई जाती है—या किसी विरले ग्रहस्थ को भी हो सकती है।

नो कषाय-अथवा अल्प कषाय—१ हास्य—हँसी आना २ रति—इन्द्रिय विषयों में प्रीत ३ अरति—कुछ भी नहीं सुहाना ४ शोक—सोच विचार में रहना ५ भय—डरते रहना ६ जुगुप्सा—जिससे ग्लानि रहे ७ स्त्री वेद—पुरुष में रमण रुचि ८ पुरुष वेद—स्त्री में रमण की रुचि ९ नपुंसक वेद—जिससे दोनों में रमण करने की रुचि हो।

आयु कर्म की चार प्रकृतियाँ

नरक आयु—जिसमें नारकी के शरीर में रहे। कारण—[illegible] अत्याचार अनाचार दुराचार है। रौद्र प्रणामी नरक का [illegible]

तिर्यंच आयु—जिससे एकेन्द्री से पंचेन्द्री पशु की [illegible]। कारण—तीव्र लोभी, मायाचारी।

मनुष्य आयु—जिसमे मानव देह मे रहे। सरल परिणामी होने से मनुष्य आयु ही है।

देव आयु—जिससे देव आयु की पर्याय मे रहे। व्रत तप, सयम दान से देव आयु मिले।

नाम कर्म की तिरानवें प्रकृतियां हैं

शरीर की सुन्दरता-कुरूपता सलोना-बेडगा अगोपाग की हीनता-अधिकता सुन्दरमय आकर्षक वर्ण-दुर्गन्ध घिनावना बनाना वर्ण यह सब ही नाम कर्म की देन है।

[४ गति]—(नरक तिर्यच मनुष्य और देव)—इस गति-नामकर्म के उदय से जीव का आकार नरक, तिर्यच मनुष्य और देव के समान बनता है।

[५ जाति]—एकइन्द्रिय दोइन्द्रिय तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय और पाचइन्द्रिय—इस जाति नामकर्म के उदय मे जीव एकइन्द्रिय आदि शरीर को धारण करता है।

[५ शरीर]—(औदारिक वैक्रियक आहारक तैजस और कार्मण)—इस शरीर नामकर्म के उदय से जीव औदारिक आदि शरीर को धारण करता है।

[अङ्गोपाग]—(औदारिक वैक्रियक और आहारक)—इस नामकर्म के उदय से हाथ पर सिर पीठ, वगैरह अग और ललाट नासिका वगैरह उपाग का भेद प्रगट होता है।

[२ निर्माण]—इस नामकर्म के उदय से अगोपाग की ठीक रचना होता है।

[५ बधन]—(औदारिक वैक्रियक आहारक तैजस और कार्मण)—इस नामकर्म के उदय से औदारिक आदि शरीरो के परमाणु आपस मे मिल जाते हैं।

[६ संघात]—(औदारिक वैक्रियक आहारक तैजस और कार्मण)—इस नामकर्म के उदय से औदारिक आदि शरीरों के परमाणु बिना छिद्र के एक रूप में मिल जाते हैं।

[६ संस्थान]—(समचतुरस्रसंस्थान न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान स्वाति संस्थान कुब्जकसंस्थान वामनसंस्थान और हुंडकसंस्थान) इस नामकर्म के उदय से शरीर की आकृति यानी शक्ल सूरत बनती है।

समचतुरस्रसंस्थान—इस नामकर्म के उदय से शरीर की आकृति ऊपर, नीचे तथा बीच में ठीक ठीक बनती है।

न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान—इस नामकर्म के उदय से जीव का शरीर बड़ के पेड़ की तरह होता है अर्थात् नाभि से नीचे के भाग छोटे और ऊपर के बड़े होते हैं।

स्वातिसंस्थान—इस नामकर्म के उदय से शरीर की शक्ल पहले से बिलकुल उल्टी होती है यानी नाभि से नीचे के भाग बड़े और ऊपर के छोटे होते हैं।

कुब्जकसंस्थान—इस नामकर्म के उदय से शरीर कुबड़ा होता है।

वामनसंस्थान—इस नामकर्म के उदय से शरीर बौना होता है।

हुंडकसंस्थान—इस नामकर्म के उदय से शरीर के अंगोपांग किसी खास नाप के नहीं होते। कोई छोटा कोई बड़ा कोई कम कोई ज्यादह होता है।

[६ संहनन]—वज्रवृषभनाराचसंहनन वज्रनाराचसंहनन, नाराचसंहनन अर्द्धनाराचसंहनन कीलकसंहनन और असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन)—इस नामकर्म के उदय से हाड़ों का बंधनविशेष होता है।

वज्रवृषभनाराचसंहनन—इस के नामकर्म उदय से वज्र के हाड़ वज्र के बेठन और वज्र की कीलियां होती हैं।

वज्रनाराचसंहनन—इस नामकर्म के उदय से वज्र के हाड और वज्र की कीली होती हैं परन्तु वेठन वज्र के नहीं होते।

नाराचसंहनन—इस नामकर्म के उदय से हड्डियों में वेठन और कीलें लगी होती हैं।

अर्द्ध नाराचसंहनन—इस नामकर्म के उदय से हड्डियों और संधियाँ आधी कीलित होती हैं यानी एक तरफ से कीलें लगी होती हैं परन्तु दूसरी तरफ नहीं होता।

कीलकसंहनन—इस नामकर्म के उदय से हड्डियों की संधियाँ कीलों से मिली होती हैं।

असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन—इस नामकर्म के उदय से जुदी जुदी हड्डियाँ नसों से बंधी होती हैं उनमें कीलें नहीं लगी होती हैं।

[८ स्पर्श]—(कड़ा नर्म हलका भारी ठंडा गर्म चिकना और रूखा)—इस नामकर्म के उदय से शरीर में कड़ा नर्म, हलका भारी वगैरह स्पर्श होता है।

[५ रस]—(खट्टा मीठा कड़वा कषायला और चरपरा)—इस नामकर्म के उदय से शरीर में खट्टा मीठा वगैरह रस होते हैं।

[२ गन्ध]—(सुगन्ध दुर्गन्ध)—इस नामकर्म के उदय से शरीर में सुगन्ध या दुर्गन्ध होती है।

[५ वर्ण]—(काला पीला नीला लाल और सफेद)—इस नामकर्म के उदय से शरीर में काला पीला वगैरह रंग होते हैं।

[४ आनुपूर्व्य]—(नरक तिर्यंच मनुष्य और देव)—इस नामकर्म के उदय से विग्रहगति में यानी मरने के पीछे और जन्म से पहले रास्ते में मरने से पहले के शरीर के आकार के आत्मा के प्रदेश रहते हैं।

[१ अगुरुलघु]—इस नामकर्म के उदय से शरीर न तो ऐसा भारी होता

है जो नीचे गिर जावे और न ऐसा हलका होता है जो आक की रुई की तरह उड़ जावे।

[१ उपघात]—इस नामकर्म के उदय से ऐसे अंग होते हैं जिनसे अपना घात हो।

[१ परघात]—इस नामकर्म के उदय से दूसरे का घात करने वाले अंगोपांग होते हैं।

[१ आतप]—इस नामकर्म के उदय से आतप रूप शरीर होता है।

[१ उद्योत]—इस नामकर्म के उदय से उद्योत रूप शरीर होता है।

[१ विहायोगति]—(शुभ अशुभ)—इस नामकर्म के उदय से जीव आकाश में गमन करता है।

[१ उच्छ्वास]—इस नामकर्म के उदय से जीव श्वास और उच्छ्वास लेता है।

[१ त्रस]—इस नामकर्म के उदय से दो इन्द्रिय आदि जीवों में जन्म होता है अर्थात् दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय अथवा पांच इन्द्रिय होता है।

[१ स्थावर]—इस नामकर्म के उदय से पृथ्वी जल अग्नि वायु अथवा वनस्पति में अर्थात् एक इन्द्रिय में जन्म होता है।

[१ बादर]—इस नामकर्म के उदय से दूसरे को रोकनेवाला और स्वयं दूसरे से रुकनेवाला शरीर होता है।

[१ सूक्ष्म]—इस नामकर्म के उदय से ऐसा बारीक शरीर होता है जो न तो किसी से रुकता और न किसी को रोकता है। लोहे मिट्टी पत्थर के बीच में से होकर निकल जाता है।

[१ पर्याप्ति]—इस नामकर्म के उदय से अपने योग्य अपने आहार, शरीर इन्द्रिय श्वासोच्छ्वास भाषा और मन इन पर्याप्तियों की पूर्णता होती है।

[१ अपर्याप्ति]—इस नामकर्म के उदय से एक भी पर्याप्ति शरीर की पूर्ण नहीं होती।

[१ प्रत्येक]—इस नामकर्म के उदय से एक शरीर का स्वामी एक ही जीव होता है।

[१ साधारण]—इस नामकर्म के उदय से शरीर के स्वामी अनेक जीव होते हैं।

[१ स्थिर]—इस नामकर्म के उदय से शरीर के धातु और उपधातु अपने अपने ठिकाने रहते हैं।

[१ शुभ]—इस नामकर्म के उदय से शरीर के अवयव (हिस्से) सुन्दर होते हैं।

[१ अशुभ]—इस नामकर्म के उदय से शरीर के अवयव (हिस्से) भद्दे होते हैं।

[१ शुभग]—इस नामकर्म के उदय से दूसरे जीवों को अपने से प्रीति होती है।

[१ दुभग]—इस नामकर्म के उदय से दूसरे जीव अपने से अप्रीति व वैर करते हैं।

[१ सुस्वर]—इस नामकर्म के उदय से स्वर अच्छा होता है।

[१ दुःस्वर]—इस नामकर्म के उदय से स्वर अच्छा नहीं होता है।

[१ आदेय]—इस नामकर्म के उदय से शरीर पर प्रभा और कान्ति होती है।

[१ अनादेय]—इस नामकर्म के उदय से शरीर पर प्रभा और कान्ति नहीं होती है।

[१ यशःकीर्ति]—इस नामकर्म के उदय से जीव का संसार में प्रशंसा और कीर्ति (नामवरी) होती है।

[१ अयशकीर्ति]—इस नामकर्म के उदय से जीव की संसार में कीर्ति नहीं होने पाती।

[१ तीर्थंकर]—इस नामकर्म के उदय से जीव को अरहन्त पद मिलता है अर्थात् वह तीर्थंकर होता है।

गोत्र कर्म की २ प्रकृतियाँ

(१) उच्च गोत्र—जिससे लोक माननीय कुल में जन्म ले।

(२) नीच गोत्र—जिससे लोक निंद्य कुल में जन्म ले।

अंतराय कर्म की पाँच प्रकृतियाँ

(१) दानान्तराय—जिससे प्राणी समर्थवान होने पर भी दान नहीं कर सके।

(२) लाभान्तराय—लाभ होने-लेने में सफलता नहीं हो।

(३) भोगान्तराय—भोग सामग्री होने पर भी भोग नहीं सके।

(४) उपभोगान्तराय—जिसके प्रभाव से उपभोग पदार्थों का उपभोग नहीं हो सके।

(५) वीर्य अन्तराय—पूरी शक्ति का नहीं होते हुए आत्म बल और शरीर बलवान नहीं हो।

यह सभी अष्ट कर्मों की ५+९+२+२८+४+९३+२+५= एक सौ अड़तालीस प्रकृतियाँ होती हैं।

अनोखी चर्चा

दया के भेद ८ प्रकार के हैं—

(१) द्रव्य दया—प्रत्येक काम को करते हुए जीव हिंसा का ध्यान रखना।

(२) भाव दया—दूसरे जीवों को दुरगति जाते देख कर अनुकंपा बुद्धि से उपदेश देना।

(३) स्व दया —आत्मा अनादि म मिथ्यात्व म ग्रसित है तत्व को नही पहिचान जिनाज्ञा का पालन नही कर पा रही है। इस प्रकार चिंतवन कर धर्म म प्रवेश करना।

(४) पर दया—षट काय जीवो की यथा शक्ति दयाद्र भाव स रक्षा करना।

(५) स्वरूप दया—सूक्ष्मता स चित्त को एकाग्र रख स्वरूप का विचार करना।

(६) अनुबध-दया—सद्गुरु तथा गुणिशिक्षक के व्यवहार म कडवे वचन स उपदेश देना। जिसम भाव सुधार हान के रहें। ऐसा कडवापन अयोग्य लगने पर भी परिणामो म करुणा का कारण है।

(७) व्यवहार दया—उपयोग पूर्वक और विधि पूर्वक दया पालन करना।

(८) निश्चे दया—शुद्ध साध्य उपयोग म एकता भाव और अभेद उपयोग का होना।

उपरोक्त आठो प्रकार की दया भाव को व्यवहार धर्म कहते हैं। ऐसे भाव जीवों का सुख सतोष अभय दान सभी दर्शाते हैं।

निश्चे धर्म—स्वरूप का भ्रमणा दूर करनी आत्मा को आत्म भाव से पहिचानने का उपाय ससार मेरा नही मैं इससे भिन्न परम असग सिद्ध सदृश शुद्ध आत्मा हूँ। इस प्रकार आत्म स्वभाव म प्रवृत्ति करना।

ससारी प्राणी के दुख अहित असतोष भयभीत को देख दया भाव उत्पन्न नही होता उसको अधम कहते हैं अथवा यह धर्म नही। अरिहतदेव के कहे धर्म तत्व स सभी प्राणी अभय होते हैं। यही कारण है इनके समोसरण म बठे प्राणी मात्र जाति विरोधी होते हुये भी सरल परिणामो स समता भाव से भगवान की वाणी ध्यानपूर्वक सुन आनन्द का अनुभव करते हैं। ऐसी निरक्षर वाणी की महानता का वर्णन करने म कौन समर्थ है कोई नही।

पंच परमेष्टि के १०८ गुणों का ब्योरा—

१२ गुण अर्हन्त भगवान के ८ सिद्धों के ३६ आचार्य के, २५ उपाध्याय के २७ साधु के कुल १०८ गुण हो गये।

आचार्य पद में रहते हुए छठे गुण स्थान से ऊपर नहीं चढ़ सकते जहाँ मुनि बारहवें गुण स्थान तक सरलता से चढ़ जाता है। ऊँचे गुण स्थान की प्राप्ति के लिये आचार्य महाराज को अपने पद को छोड़कर मुनि पद धारण करना पड़ता है। इसका कारण मान कषाय की कुछ अधिकता और मुनियों की साधना को देखभाल के साथ विचार में उनको प्रायश्चित्त देने में सारा आत्म चिन्तन का समय पूर्णतया नहीं मिलता।

मान कषाय से अधोगति के प्रमाण—

चक्रवर्ती की पटरानी जो अन्तिम छठे नरक ही जाती है। वह मान कषाय से ही अधोगति होती है। वह यह सोचती रहती है मैं चक्री की ९६००० रानियों में प्रमुख और छः खंड पर राज करने वाला मेरे वश में है यही मान (घमंड) उसे छठे नरक में ले जाता है ऐसा नियम है।

बाहु बलि को मान के वश घोर तपस्या करने पर भी केवल ज्ञान होने में देर लगी

जब भरत चक्री के भ्राता को घोर तपस्या करते-करते बारह मास बीत गये महान तप से उनकी काया अति क्षीण अवस्था पंजरावशेष रह गई वह सूखे वृक्ष समान दिखने लगे। फिर भी मान अंकुर अंत करण से नहीं छूटा जिसके कारण केवल ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकी। ब्राह्मी सुन्दरी ने उपदेश दिया—हे भाई वीर घोर तपस्वी मदोन्मत्त हाथी पर से उतरो। जिसके कारण बहुत सहन करना पड़ा। यह शब्द कान में पड़ते ही विचारते विचारते यह भान होने लगा, ठीक है—मैं अभी मदोन्मत्त हाथी से तो उतरा ही नहीं। इस पर से उतरना ही मंगल कारक होगा। यह निश्चय कर वन्दना हेतु पैर उठाना ही चाहा तो उन्होंने तुरन्त ही अनुपम दिव्य केवल ज्ञान को पाया। मान की अणु मात्र शल्य भी दूषित वस्तु है।

रतन राशि मे

अनुपम—(चिन्तामणि) को भव्य जीव ही ग्रहण करेगा

अतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के मोक्ष पधारने के पीछे छ केवली और हो गये हैं जिनको मोक्ष पचमकाल के प्रारम्भ मे होने का कारण यही है कि इनका जन्म चतुर्थकाल मे हो चुका था उनके नाम—गौतम स्वामी जम्बू स्वामी श्रीधर जीवधर सुधर्माचार्य उद्यायन।

चौबीस तीर्थङ्कर कौन-कौन आसन से मुक्त पधारे—

पद्मासन से—श्री शान्तिनाथ श्री वासु पुज्य श्री नेमनाथ।

खड्गासन से—शेष २१ भगवान खड्गासन से मुक्त पधारे।

जीवों में तीन प्रकार के भव्य—

भव्य—जिसमे सम्यग्दर्शन ग्रहण करने की योग्यता हो।

दूरानुदूर भव्य—ऐसे जीव मे ऐसी योग्यता तो है परन्तु उसको सम्यक्त्व धारण करने का निमित्त मिलेगा ही नही।

अभव्य—मे सम्यक् प्रगट करने की योग्यता है ही नही। इन तीनो का उदाहरण ऐसा बताया है। जैसे पुत्रवती विवाहिता स्त्री के समान विधवा स्त्री के समान बाझ स्त्री के समान।

सम्मूर्छन जीव—जिन जीवो की उत्पत्ति (जन्म) गर्भ से नही होते हुये, पच भूत के समागम मिलने पर भूत चतुष्टय बन जाती है। ऐसे सम्मूर्छन जीव अपर्याप्त अवस्था मे ही जनमते मरते रहते हैं। अपर्याप्त का अर्थ है जिस जीव के अगोपाग पूर्ण होने से पहले ही जन्म मरण को प्राप्त हो वह अपर्याप्त जीव कहलाता है। ऐसे सम्मूर्छन जीव स्त्री की योनि बगल जघा कान स्तन के नीचे अधिक संख्या मे सदैव जन्म मरण करते रहते हैं जिनका स्त्री भोग के समय हतान्त होना अवश्य ही होता है। स्त्री आलिंगन मात्र से भी इन जीवो की हिंसा होती है।

ब्रह्मचारी इस हिंसा कार्य से मुक्त हो रहता है—

स्त्री पर्याय को घोर तप करने पर भी सोलवें स्वर्ग तक जाने की ही

स्थापना है जहाँ पाप से पाप करने पर भी सातवें नरक से आगे नहीं। इसका कारण उच्चतम संहनन का अभाव ही होता है।

प्रथम स्वर्ग के सौधर्म इन्द्र की सम्पूर्ण आयु पर्यन्त के अन्तराल में उसकी शची इन्द्राणियां का संख्या चालीस नील है जो एक के पीछे एक जन्म लेती है। अर्थात् शची इन्द्राणी अपनी ५५ पल्य मात्र की आयु पूर्ण कर केवल एक भव मनुष्य का जन्म धारण कर नियम से इसी से पहले मोक्ष प्राप्त कर लेती है। इसके महान पुण्य का कारण तीर्थंकर भगवान का गर्भ प्रथम सपर्शन और दान पान का है। ऐसा अवसर एक ही शची इन्द्राणी का अधिक से अधिक १७० तीर्थंकरों के जन्म कल्याणक का अवसर प्राप्त हो सकता है जो—५ भरत के + ५ ऐरावत के + १६० विदेह क्षेत्र की नगरियों के कुल १६० + १० = १७० तीर्थंकरों का जन्म कल्याणक करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकती है।

पल्य—अर्थात् गड्ढा—सागर अर्थात् समुद्र।

पल्य के विस्तार की अवधि ज्ञानी ही अनुभव कर सकता है।

सागर का विस्तार भी केवल ज्ञान का ही विषय है।

पूर्व—श्रुतज्ञान का विषय है एक पल्य पूर्व से असंख्यात गुणा और सागर पल्य से असंख्यात गुणा ही समझना चाहिए। एक पूर्व (७०५६०००००००००) वर्ष का होता है। चौरासी लाख वर्ष का एक पूर्वांग चौरासी लाख पूर्वांग का एक पूर्व।

श्री पद्मनन्दि स्वामी के शब्द

भव्य का रुचि—चैतन्य स्वरूप आत्मा के प्रति प्रीति-पूर्वक उसकी कहानी भी जिसने सुनी है वह भव्य जीव निश्चय से भावी निर्वाण का भाजन होता है।

भागचन्द जी के शब्द

नित्य निगोद माहि ते कढ़ कर नर पर्याय पाय सुखदानी।
समकित लह अंतर्मुहूर्त में केवल पाय वरे शिवरानी॥

आगम म भी एसा लेख मिलता है नित्य निगोद स सीधी नर पर्याय धारण करने वाले भरत चक्रवर्ती क ३२००० पुत्र उसी पर्याय स मोक्ष पधारे। यह है सायक सम्यक्त्व की अपरम्पार महिमा।

देवागनाओं की उत्पत्ति—जिनागम म दूसरे स्वग तक ही कही है। सोलहवें स्वग तक क देव अपनी अपनी नियोगनी देवागनाओं की उत्पत्ति अवधि ज्ञान द्वारा जान यहाँ स अपन अपन स्वर्गो म ले जाते हैं ऐसी देवयों का पुण्य उपरन स्वर्गो के अनुसार ही होता है।

सोलहवें स्वग स ऊपर क स्वर्गों म सभी देव समान पदवी वभव के धारी अहमन्द्र होते हैं इनम समानता होने के कारण ईर्षा भाव का अभाव है। यहाँ देवागनायें भी नहीं होती हैं इसी लिए इन अहमन्द्रो को काम वासना का स्वाभाविक अभाव है तो इनका आजन्म ब्रह्मचारी होना भी स्वाभाविक ही होता है। ग्रीवक स उपरल नो अनुदिश—चार अनोत्तर विमानो क देव नियम स निकट भव्य—दो भवधारी अधिक स अधिक होते हैं जहाँ स्वार्थसिद्धि के एका भवधारी नियम स होते हैं। लोकान्तिक देव भी नियम से एका भवधारी और लोकपाल तथा इन्द्र प्रथम स्वग का और उसकी शची इन्द्राणी सभी नियम स एकाभवधारी ही होते हैं—यह सब ही जाव सम्यग्दृष्टि होते हैं।

मद कषाय की महिमा—मन्द कषाय होने क कारण भोग भूमि के सभी जीव नियम पूवक देवलोक म ही उत्पन्न होते हैं और यह भोग भूमया जीव दीर्घ आयु होते हुए भी सारी आयु ब्रह्मचारी रहते हैं केवल अन्तिम समय एक बार सभोग करते हैं जिसके कारण उनके जुगल जोड (सतान) की उत्पत्ति होते ही एक जमाई मात्र स मृत्यु हो जाती है।

सहनन—चतुर्थकाल तक छहो सहनन होते हैं जहाँ पाचवें दुखमा काल में अंतिम तीन सहनन का होना सभव है जसे बन्दर की कीलक सहनन होता है।

निगोदा जीव—लोकालोक और अष्टम भू अथवा सिद्धालय म भी स्थित है।

अपर्याप्त पंचेइन्द्रिय सम्मूछन जीव—स्त्री के शरीर में निरंतर उत्पन्न होते रहते हैं। जिनका स्थान विशेष रूप से स्त्री की योनि बताया है ऐसे जीवों का मनुष्य संभोग करने से निश्चय मरण होता है। इस दृष्टि में ब्रह्मचर्य व्रत पालन करना उत्तमोत्तम और कल्याणकारी है। एक ब्रह्मचारी व्रत ही देवायु में ले जाता है जहाँ अष्टान्हिका पर्व में नन्दीश्वर द्वीप के अकृत्रिम चैत्यालयों के दर्शन मात्र से सम्यक्त्व की उत्पत्ति निश्चय और सरल होती है।

दिन रात का विचार—जब विदेह क्षेत्र में दिन होता है तो भरत क्षेत्र में रात्री होता है ऐसा आगम कहता है। इस पंचम दुखमा काल में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की जैव विदेह क्षेत्र में सीमंधर तीर्थंकर के समोशरण में ले गया था वहाँ आचार्य महाराज आठ दिन बराबर ठहर कर अपनी शंकाओं का निवारण करते रहे वहाँ दिन के होते हुए भरत में रात्री का होना स्वाभाविक था और जब वहाँ रात्री हो जाती तो रात्री में वहाँ आहार लेना नियमानुसार विरुद्ध था। जिसके कारण आचार्य महाराज आठों दिन निराहार रहे। नियम को निर्दोष पालन करना भावों की स्वच्छता पर ही निर्भर है।

तीर्थंकर न्हवन के कुछ आंकड़े—भगवान तीर्थंकर के जन्म कल्याण के समय इन्द्रादिक देवादि देवों द्वारा १००८ स्वर्ण कलशों द्वारा अभिषेक होता है जो क्षीर सागर के जल जो क्षीर के समान जीव रहित निर्मल होता है देवों की पंक्ति में खड़े होकर हाथों हाथ लाया जाता है। उन स्वर्ण कलशों का विस्तार इस प्रकार से होना है—मुख एक योजन पेट चार योजन गहराई आठ योजन होती है। ऐसे १००८ कलशों से नवजात तीर्थंकर का अभिषेक सुमेरु पर्वत पर इन्द्रादि द्वारा सम्पन्न होता है। कवि ने कहा है—

जा धारा ते गिरि शिखर खण्ड खण्ड हो जाय।
सोधारा जिन शीस पर पुष्प कली सम जाय॥

महावीर स्वामी के अभिषेक के समय इन्द्र को शंका उत्पन्न हुई के भाजकल के समय जरा छोटे बालक इतनी मोटी जलधारा से रुक नहीं जाय, तुरन्त ही भगवान ने अपनी अवधि से उस शंका का समाधान इस प्रकार

लिया कि अपने पाँवे पर का अगूठा दबा कर सुमेरु पर्वत को डगमगा दिया। ऐसा होने पर इन्द्र का भ्रम दूर हो गया और तीर्थंकर भगवान तो अनन्त बल के धारी हैं बालक हुए तो क्या। तुरन्त ही इन्द्र ने अपना भूल स्वीकार कर क्षमा प्रार्थी हुआ।

तीर्थंकर के बल का प्रमाण—२००० सिंह का बल एक अष्टापद में दस लाख अष्टापद का बल एक बलदेव में दो बलदेव का बल एक वासुदेव में, दो वासुदेव का बल एक चक्रवर्ती में दस लाख चक्रवर्ती का बल एक देव में दस लाख देवों का बल एक इन्द्र में एसे अनन्त इन्द्र एक साथ मिल कर तीर्थंकर की चिटली (कनिष्ठा) अंगुली को भी हिला नहीं सकते। उदाहरण भी हरिवंश पुराण में मिलता है जब कृष्ण जी की सभी रानियाँ ने नेमनाथ तीर्थंकर को अपने पति के घमंड में स्वपति के बल का मान करते हुए उनका तिरस्कार करने के भाव प्रभु को नग्न करना जब जा ने सभी माण्य योधाओं को लोह शृंखला पकड़ कर कृष्ण सहित खेचने को कहा जब वे आप उस शृंखला को अपनी चिटली अंगुली से ही पकड़े थे तो सभी का पूर्ण बल लगने पर प्रभु ने अपना हाथ ऊंचा कर सभी को झूला दिया जिससे सभी रानी और कृष्ण जी को लज्जित होना पड़ा जिससे मान चूर चूर हो गया।

ज्योतिषी नक्षत्रों की ऊँचाई की सारणी (एक योजन=२००० कोस)

सूर्य–८०० यो० चन्द्रमा–८८० यो० २८ नक्षत्र–८८४–यो० बुध–८८८ यो० शुक्र–८९१ यो० बृहस्पति–८९४ यो० मंगल–८९७ यो० शनि–९०० यो० ऊंचाई पर है। इन नक्षत्रों का इन्द्र चन्द्रमा है ज्योति प्रकाश करने वाले होने से इनका नाम ज्योतषी देव कहलाया।

८४ लाख योनियों का ब्योरा—नित्य निगोद की सात लाख इतर निगोद की सात लाख पृथ्वी कायक सात लाख जल कायक सात लाख वनस्पति कायक दस लाख दो इंद्रिय-तेइंद्रिय चौइंद्रिय तीनों के दो दो लाख देव नारकी और पंच इंद्रिय तिर्यंचों के चार चार लाख मनुष्यों के १४ लाख। यह सब ही मिल कर ८४ प्रकार की योनियों के भेद हुए।

विदेह क्षेत्र में सीमंधर तीर्थंकर की आयु का अनुमान

श्री सीमंधर तीर्थंकर भगवान को भरत क्षेत्र में होने वाले मुनि मुव्रतनाथ जी तीर्थंकर के समय में केवल ज्ञान प्राप्त हुआ था और भविष्यकाल के उत्सर्पिणी काल में जब छठे तीर्थंकर होंगे उस समय मोक्ष प्राप्त होगा। इतनी उनकी विदेह क्षेत्र में आयु है।

गति आगति के जिनागम अनुसार कुछ आंकड़े

(आगति) अर्थात् आना—नारकी जीव अपनी आयु पूर्ण करने पर पुनः नरक में जन्म नहीं होता है और देव गति में भी नहीं जन्म पा सकता। नारकी जीव नरकायु पूरी करने पर तिर्यंच और मनुष्य ही हो सकता है।

पहिले दूसरे तीसरे नरक के नारकी जीव मनुष्य पर्याय पा कर तीर्थंकर भी बन सकते हैं।

चौथे नरक के जीव तुरन्त मनुष्य जन्म धारण कर तद्भव मोक्षगामी हो सकते हैं।

पांचवें नरक के जीव नर पर्याय में आकर मुनि धर्म का पालन कर सकते हैं।

छठे नरक का जीव नर तथा पशु बन कर देश व्रत सम्यक्त्व तक की प्राप्ति करने में समर्थ हो सकता है।

सातवें नरक के जीव आयु पूर्ण कर पशु गति में कर्म भूमि के गर्भज ही होंगे। अथवा सातवें नरक के जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच ही होते हैं और तिर्यंच आयु पूर्ण कर पुनः नरक में ही जाते हैं।

किसी भी नरक से आये हुए जीव को चक्री-बलभद्र नारायण पद की प्राप्ति होना असंभव है।

(गति) सभी असैनी जीव मर कर जाते हैं, इससे आगे नहीं।

भुजसरी सर्प छिपकली आदि दूसरे

पक्षी तीसरे नरक तक ही जा सकते है।
उरग साप चौथे नरक तक ही जा सकते हैं।
सिंह पाचवें नरक तक ही जा सकता है।
स्त्री छटे नरक मे आगे नहीं जा सकती।
मनुष्य तथा तदुल मत्स्य सातवें नरक तक भी जाते है।
मनुष्य उत्तम सहनन धारी ही सातवें मे जा सकता है हीन सहननधारी नही।
यतर ज्योतिषी भवनवासी देव मर कर श्रेष्ठ शलाका पुरुष नही हो सकते तदभव मोक्ष गामी हो सकते हैं।

चौबीस ठाणा के उत्तर भेद

१ २ ३ ४ ५ ६
गति, इद्रिय अरु काय गिन योग अरु वेद कषाय।
७ ८ ९ १० ११
ज्ञान दरश सयम लखो लेश्या भव्य सहाय ॥१॥
१२ १३ १४ १५ १६
समक्ति सनि अहार का जिय-समास गुण-थान।
१७ १८ १९ २० २१
पर्याप्ति अरु प्राण गिन सज्ञा आश्रव ध्यान ॥२॥
२२ २३ २४
कुल जाती उपयोग गिन चौबीस ठाण भेद।
टाल सभी व्यवहार तजि तजो सकल जग खेद ॥३॥

(गतियाँ ४) देव मनुष अरु नारकी गति तिर्यच पिछान।
जे ससारी जीव हैं सुगतें दुख महान॥

(इद्रियाँ ५) सपरस रसना नासिका घ्राण कर्ण पहिचान।
पाचो इद्रिय वश करो जो चाहो निर्वान॥

(काय ६) पृथ्वी जल अरु अग्नि है वायु वनस्पति काय।
त्रसकायक भी जीव है दया करो मन लाय॥

(योग १५) सत असत्य अनुभय उभय मन के चार विचार।
इसी तरह से वचन के भेद किए निरधार॥
औदारिक इक काययोग दो औदारिक मिश्र।
वैक्रियक है तीसरो चौथो वैक्रियक मिश्र॥
पांच अहारक काय है छः अहारक मिश्र।
कार्माणक है सातवां सब पुद्गल का पिंड॥

(वेद ३) स्त्री पुरुष नपुंसका भेद तीन ले जान।
इन वेदनि सों मोड़ि मुख निज आतम पहिचान॥

(कषाय २५) क्रोध मान माया तथा लोभ सहित जो भाव।
चार चौकड़ी से गुनो सोलह भेद लखाव॥
हास्य अरति रति का गिला भय अरु शोक विचार।
जुगउप्सा अरु वेदत्रय नौ कषाय दुखकार॥

(ज्ञान ८) कुमति कुश्रुति अरु कुअवधि सुमति श्रुति यों जान।
मन पर्यय अरु केवली आठ भेद पहिचान॥

(संयम-७) असंयम संयमासंयम सामयिक को जान।
छेदोपस्थापन करो परिहार विशुद्धि विधान॥
सूक्ष्म साम्पराय गना यथाख्यात मन लाय।
संयम का धारण करो शिवपुर पहुंच जाय॥

(दर्शन ४) चक्षु अचक्षु अरु अवधि है केवल दर्श विधान।
तीन दर्श को त्यागिकर केवल दर्श लहान॥

(लेश्या ६) कृष्ण नील कापोत ये लेश्या अशुभ पिछान।
पीत पद्म अरु शुक्ल को शुभ लेश्या लो जान॥

(भव्य २) भव्य जीव शिवपुर लहैं अभवि भ्रमें जग माहिं।
कारि उपाय मिलाय कर समकित धरि मन माहिं॥

(समकत्व ६) मिथ्या सासादन समकित मिश्र भाव पहिचान।
उपशम वेदक क्षायका समकित षट विधि जान॥

(सनी २) जा शिक्षा धारण करे, सना जीव कहाय।
मन बिन शिक्षा ना ग्रहे जीव असनि कहाय॥

(आहारक २) आहारक व भेद दो आहारक अनहार।
'तारा' समझि मन आपने मत म करो विचार॥

(गुणस्थान १४) मिथ्या, सासादन कहा मिश्र अव्रती जान।
अणुव्रती प्रमत्तवृत अप्रमत्त गुण थान॥
अपूर्वकरण अष्टम समझि अनिवृत करण नव जान।
सूक्ष्म सापराय कहा, उपशाली मोह महान॥
क्षीण मोह करक तुरन्त केवलि थान उपाय।
भए अयोगी केवली शिवपुर पहुँच जाय॥

(जीव समास १६) पृथ्वी जल अरु अगिनि गिन वायु काय मिलाय।
नित्य औ इतर निगोद को दोय गुना कराय॥
सूक्षम बादर भेद से दो दो भांति लगाय।
जीव समास इस भांति स बारह भेद बताय॥
प्रत्येक वनस्पति एक है साधारण है एक।
दो इन्द्रिय जीव एक गिन ते इन्द्री जीव एक॥
चौइन्द्री भी एक है सनि असनि इक इक।
बारह सात मिलायकर, जीव समास अनेक॥

(पर्याप्ति ६) आहार पर्याप्ति प्रथम दोय शरीर सयोग।
तीजी इन्द्रिय पूर्णता भाषा मन सयोग॥
स्वासो का आवागमन षट विधि है पर्याप्ति।
पूर्णता का पायकर जीव द्रव्य हो व्याप्त॥

(प्राण १०) पांचो इन्द्रीय पूर्णता छठमा मनबल होय।
सप्त प्राण है वचन बल अष्ट काय बल होय॥
स्वास प्राण नवमा कहा, आयु प्राण दश जान।
कम से कम ता चार हो ज्यादा हो दस प्रान॥

(सज्ञा ४) आहार भय, मैथुन कहा परिग्रह सज्ञा जान।
इन रहते यह जीव नित भुगते दुख महान ॥

(उपयोग १२) आठ भेद हैं ज्ञान के चार दरश के जान।
द्वादश विधि उपयोग है कर आतम सरधान ॥

(ध्यान १६)

(आर्तध्यान ४) इष्ट वियोग विचारकर औ अनिष्ट सयोग।
पीडा का चिंतन करे कर निदान दुख भोग ॥

(रौद्र ध्यान-४) हिंसा कर आनन्द लहे झूठ बोल सुख होय।
चोरी कर सुख को लहे परिग्रह म रत होय ॥

(धर्म ध्यान ४) आज्ञा विचय विचारकर कर अपाय विच ध्यान।
विपाक विच तीजा कहा सस्था विचय प्रमान ॥

(शुक्ल ध्यान ४) पृथकत्व वितर्क विचारकर एकत्व वितर्क कर ध्यान।
सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति कर व्युपरत क्रिया महान ॥

५ १२ १५ २५

(आश्रव ५७) मिथ्या अव्रत योग अरु वस कषाय व होय।
आश्रव होता करम का दुखमय आतम होय ॥

(मिथ्यात्व ५) एकान्त विनय विपरीत है सशय अरु अज्ञान।
मिथ्या भाव बन रहे तब तक दुख महान ॥

(अव्रत १२) रक्षा ना षट्काय की इन्द्रिय वस नहि होय।
मन की दौड अनेक विधि अव्रत गमभी सोय ॥

(जाति ८४ लाख) पृथ्वी जल अरु अग्नि गिन वायु काय को जान।
नित्य औ इतर निगोद की सात सात लाख प्रमान ॥
वनस्पति दश लाख दस [illegible] दो लाख।
त इन्द्री दो लाख हैं चौ [illegible] दो लाख ॥
चार लाख पशु का कहा नारक भी चौ लाख।
चार लाख ही देव है मानुष चौदह लाख ॥

(कुल १९९ कोटि) मानुष चौदह लक्ष प्रमान छब्बिस लक्ष देव पहिचान।
पच्चीस लाख नारकी जान अब त्रियचक भेद पिछान॥
एक सौ साढ़ चौतिस लाख भेद करो त्रियच सुमार।
इस प्रकार यह जीव गमार दुख का कबहूँ न पावे पार॥
दोहा में चर्चा रची भव्य जननि हित काज।
याद करो भविजन सकल सुमिरो श्री जिनराज॥

रचता श्री प्यारेलाल बरया जन (लश्कर)

सती चंदन बाला का कारावास

खेद खिन्न है चंदन बाला फटा हुआ पहिने है चीर।
सुन्दर कोमल दिव्य गात में लोह की जकडी जंजीर॥
कारागृह में पडी हुई है महावीर का करती ध्यान।
अशुभ कम का उदय जानकर नहीं चित्त में हानी म्लान॥
भाजन किये तीन दिन बीते अब भी दृढ़ है यही विचार।
भोजन करूं करा कर मुनि को मैं अपने हाथों आहार॥

चंदन बाला का वीर प्रभो को आहार दान

देव योग से उसी राह पर चर्या को आये महावीर।
बडीयुत ही सभी हो गई पडगाहे बाला ने वीर॥
कोदों भात सूप में रक्खा मिट्टी के बतन में नीर।
शील प्रभाव कनक भाजन में बना भात शुचि मीठी क्षीर॥
बनी बेडियां सुवण भूषण फटे वस्त्र सुन्दर परिधान।
अंतराय विन भोजन से ही हुए पंच आश्चर्य महान॥

समय विनात म समय हो जाते हैं तो एसी दशा म जीव महीनो स्थिर रह कर भूक, प्यास, सर्दी गर्मी नींद आलस्य की बाधा से प्रभावित नहीं होता।

जस केवली भगवान साक्षात ज्ञान स्वरूप शुद्धात्म है वस श्रुतज्ञानी साधक भी अनुभव दशा के निर्विकल्प म ज्ञान स्वरूप शुद्धात्मा हुआ है अथवा उस दूर होकर उस की अनुभूति म आत्मा की प्रसिद्धि हुई है सो इसे समय सार कहन म कोई आपत्ती नही है।

ज्ञानी सम दृष्टि जीव क परिणमन म तो आत्मरस की लहर हो उछलती है चैतन्य क स्वच्छ महल म राग रूपी मल वहा ज्ञानी राग को जानते हुए भी उस का कत्ता नहीं केवल अपन निमित्त ज्ञान चेतना का ही करता है।

सम्यक दृष्टि जीव चाहे नारकी भी क्या न हो वह तो नव ग्रीवक के मिथ्या दृष्टि अहमिन्द्र म अनन्तगुणा प्रशसनीय है, तथा सुखी भी है क्योंकि ऐसे मिथ्या दृष्टि अहमिन्द्र का दर्जा प्रथम गुण स्थान है जो अनन्तानुबन्धी कषाय वाला होता है जब के सम्यक दृष्टि नारकी कादर्जा चौथ गुण स्थान वाला है जो प्रतिख्यान कषाय वाला है।

सम्यक दृष्टि चक्रवर्ती सग्राम म खडा अनक जीव हताहत करता है फिर भी उस के ज्ञान मइ भाव क्रूरता रहित होन पर समता को धारण करते हैं परन्तु द्रव्यलिंगी मुनि जो २८ मूलगुणों का निरतीचार पालन करन वाला हो तो भी मिथ्या दृष्टि है और अज्ञानता क कारण ससारी और नरक गामी है जहाँ चक्री स्वर्ग मोक्ष का पात्र होता है। यह सभी सम्यक दर्शन की महात्ता है।

फुटकर उपयोगी चर्चा

जीव आत्मा शरीर छोडन पर जब अन्य शरीर म जिस स्थान पर जाती है तो उसको अधिकाधिक तीन मोड लेकर नियत स्थान पर पहुचना आवश्यक होता है तो इसका मार्ग केवल सीधी छ दिशाओ म ही होता है शेष चार विदिशाओ म नही अगर एक ही मोडे पर जाकर दूसरे शरीर म

प्रवेश करने तो उसको पिछल ज म का हाल या" रहता है। "ा तीन माह पर पिछला सभी कुछ भूल जाता है ॥

अनादि काल स जीव मात्र क साथ राग द्व प लगे हुए हैं फिर भी जीव को धम सुनने का निमित्त मिलने पर द्व प का हलका हो जाना कुछ सुगम है परन्तु राग स छुटकारा मिलना अति दुलभ होता है जहा इस राग स छुटकारा मिला अथवा इसके क्षय होते ही भावो म वीतरागता आन स वीतराग पदवी को जीव धारण कर लेता है ॥

श्री पद्म नन्दी स्वमी न कहा है

चैतय स्वरुप आत्मा क प्रति प्रीति चित्त पूवक जिसनी भी जिस भव्यात्मा ने सुनी है वह प्राणी निश्चे म भावी निर्वाण का भाजन है।

निगोदया जीवो का परम औदारिक शरीर क अतिरिक्त सिद्ध लोक म भी सम्भाव है —

—कल्याण मई दोहे—

वीतराग छवि निरख के होत परम आनन्द,
भव्य जीव सम्यक लहे कटें कम क फंद ॥ १
श्री जिन पूजा जो कर सो नर इन्द्र समान।
पुण्यवान ता सम नहीं सेवत सुरनर आन ॥ २
पहिन आभूषण इन्द्र से पूज जिनवर देव।
पाप पुज को भस्म कर, सुख पावे स्वमेव ॥ ३
सकल महासव उस घर होवे जह जिन वाणी होय प्रकाश।
भव्य जीव पद समकित धारें, कर दें अष्ट कम का नाश ॥
दिन म रवि स निशि म शशि से नहीं प्रयोजन रहा मुझे।
नाश हो गया सारा ही तम प्रभु क मुख की कान्ति स ॥
श्वेत सुगध कोटि अक्षत से मत्र राज जो जपता है।
चक्री पद का सहज पायकर मुक्ति वधू को वरता है ॥

दर्शन पाठ

दर्शन के प्रताप से आया पर का भेद।
शीतल है संसार अरु मिट जायें सब भ्रम

दर्शन से जिनराज के मोह दूर भग जाय।
कर्म मोहनीय मेंटकर शिव मारग नर पाय

दर्शन श्री अरहन्त का ज्ञानवरणी मेट।
शुक्ल ध्यान से सहज ही करवाता है भेंट।

दर्शन से अरहन्त व सिद्ध रूप मिल जाय।
सिद्ध चिन्तन जीव को जीवाजीव सुभाय॥

दर्शन से आचार्य के मिलता है चारित्र।
उपाध्याय जिनवाणी का ज्ञान कराते मित्र॥

दर्शन से मुनिराज के साधु अवस्था देख।
रत्नत्रय की साधना का है यह सुर भेष॥

दर्शन जिनवर मैं करूं वीतराग विज्ञान।
शान्त प्रतिमा मूरती अनन्त चतुष्टय खान॥

दर्शन पाया आज मैं शुभ करमन परताप।
मुझको निश्चय हो गया दूर भगा है पाप॥

दर्शन से जिनवाणि के सब दर्शन खुल जाय।
सप्त भंग प्रताप से ज्ञान यथारथ पाय॥

दर्शन जिसको हो गया निश्चय अरु सम्यक्त्व।
स्वर्ग भोग कर मोक्ष भी पाता है वह भक्त॥

दर्शन कर दर्शन करो आतम देव गुण ज्ञान।
ये दर्शन चिन्तन मनन पा हो आप समान॥

दर्शन कर जिन बिम्ब का रहस्य दिगम्बर जान।
वीतराग चैतन्य या साक्षात भगवान॥

दर्शन जैसा मैं किया सब को दर्शन होय।
"वीर दिगम्बर सब बनें रत्नत्रय संजोग॥

ॐ

श्री वीतरागाय नम

आनन याग्य विशेष भाविडे —

अरिहत पूजा के पाँच अग होते हैं (१) आह्वानन (२) स्थापना (३) सन्निधीकरण (४) पूजन (५) विसर्जन—

पूजन करने योग्य जिनकी भावयुक्त विनय करनी चाहिये जिनागम में यो ही बताये है—ऐसी शास्त्र पूजन करते समय पूजन के थाल म नो स्वास्तिक ही बनाने चाहिये चार चार दिशाओं म चार चार विदाशाओं म—एक थाल के बीचों बीच मध्य म यह कुल नौ सतिय बनाना आवश्यक है—एक ऊपर उत्तर में अर्ध चन्द्राकार जो सिद्ध शिला को सकेत करता है—बनाना चाहिये।

[नौ परम पूज्य देवता]—(५) पंच परमेष्टि—(१) जिन—मन्दिर (१) जिन प्रतिमा (१) जिन वाणी, (१) जिन धर्म=९=इन नौ देवताओं की पूजा भक्ति विनय मन वचन काय से करने वाले को रत्न त्रय की वृद्धि होती है।

[अरिहत के गुण] सुगुण छियालिस हैं तुम माहि।
[छियालिस होते हैं] दोष अठारह कोई नाहि॥

[उत्तर] चौतीसों अतिशय सहित प्रातिहार्य पुनि आठ।
अनन्तचतुष्टय गुण सहित य छियालीसों पाठ॥

[जन्म के दस गुण] पसीना नहिं—(१) मल नहिं—(२) समचतुरस्रसस्थान (३) वज्रवृषभनाराचसहनन—(४) अत्यन्त सुन्दरता—(५) शरीर म अत्यन्त सुगध—(६) सब प्रिय हितमित वचन मे मधुरता—(७) रुधिर का श्वेत रग—(८) शरीर मे १००८ शुभ लक्षण—(९) अतुल बल—(१०) यह गुण जन्म से ही होते हैं। जो अतिशय कहे जाते हैं। इन ही अतिशयों को आगे के रूप पढ़िये।

दोहा—अतिशय रूप-सुगध तन, नाहि पसेव निहार।
प्रियहित वचन अतुल्य बल रुधिर श्वेत प्रकार
लक्षण सहस्र अाठ तन सम चतुष्क सठान।
वज्रवृषभ नाराच जुत य जिन मत दश जान।

(दस केवलज्ञान, के अतिशय)

दोहा—योजन शतइक म सुभिक्ष गगन गमन मुख चार।
अन्या ना उपसग ना नाही कवलाहार॥
सब विद्या ईश्वर पनो नाहिं बढ़ें नख केश।
अनिमिष दृग छाया रहित दश केवल के वेश॥

अरिहन्त भगवान के चारो ओर सौ सौ योजन तक अकाल नही (१) अतरीक्ष गमन करना (२) एक मुख के होने हुये चारो ओर समान दशन (३) हिंसा का नही होना (४) उपसग नहीं होना (५) कवलाहार नही (६) समस्त विद्याओ म निपुण (७) नाखून बाल नहीं बढ़ना (८) नेत्र पलको का भपकना नहीं (९) शरीर की छाया नही पडना (१०) यह दसो अतिशय केवली के होते हैं।

(१४ देव कृत अतिशयो के नाम)

देवरचित हैं चारदश अर्धमागधी भाष।
सब जीवो स मित्रता निमल दिश आकाश॥
हों सब ऋतु के फूल फल पृथ्वी काँच समान।
चरन कमल तल कँवल हैं नभ ते जय जय वान॥
शीतल मन्द सुगध हवा ग धोदक की वृष्टि।
भूमि विष कटक नहीं हष मई सब सृष्टि॥
धमचक्र आगे रहे पुनि बसु मगल सार।
अतिशय श्री अरिहन्त के या चौंतीस प्रकार॥

अर्धमागधी भाषा (१) जीवो म परस्पर मित्रता (२) निमल दिशा (३) निमल आकाश (४) छहों ऋतुओ के फल फूल धान्य आदि एक ही

समय न होना, (५) एक योजन तक भूमि दर्पण तुल्य निर्मल (६) चलते समय पगों तले सुवर्ण कमल (७) आकाश में जय जय कार ध्वनि, (८) शीतल मन्द सुगंध पवन (९) भूमि कण्टक रहित (१०) समस्त प्राणी आनन्दमय (११) धर्म चक्र का आगे २ रहना (१२) अष्ट मंगल द्रव्य साथ रहना, (१३) सुगंधित जल वृष्टि। १४ कुल हो गये।

[(८) प्रातिहार्यों के नाम]

तरु अशोक के निकट में सिंहासन छविदार।
तीन छत्र सिर पर लसें भामण्डल पिछवार॥
दिव्य ध्वनि मुख तै खिरे, पुष्प वृष्टि सुर होय।
ढोरें चौंसठ चवर सुर बाजे दुन्दुभि जोय॥

भगवान के पास अशोक वृक्ष (१) रत्नमय सिंहासन (२) सिर ऊपर तीन छत्र (३) पीठ पीछे भामण्डल (४) दिव्य ध्वनि खिरना (५) देवों द्वारा पुष्प वृष्टि (६) चौंसठ चवर यक्ष देवों द्वारा ढुरना (७) दुन्दुभि बाजे (८) यह आठ प्रातिहार्य होते हैं।

[(४) अनन्त चतुष्टय के नाम]

ज्ञान अनन्त अनन्त सुख दरश अनन्त प्रमान।
बल अनन्त अरिहन्त से इष्ट देव पहिचान॥

अनन्त दर्शन (१) अनन्त ज्ञान (२) अनन्त सुख (३) अनन्त वीर्य (४) ये चारों अनन्त अर्थात सीमा रहित होने से—अनन्त चतुष्टय कहलाते हैं—

(१०) जनम+(१०) देव केवल ज्ञान के दस+(१४) देव कृत +(८) प्रातिहार्य+(४) अनन्त चतुष्टय=कुल अरिहन्त केवली भगवान के ४६ गुण हो गये।

[(१८) दोषों के नाम]

जन्म जरा तृषा क्षुधा विस्मय आरत खेद।
रोग शोक मद मोह भय निद्रा चिन्ता स्वेद॥

राग द्वेष अरु मरण युत ये अष्टा दश दोष।
नहि होते अरिहन्त के सो छवि नायक मोष ॥

जनम (१) जरा (बुढ़ापा) (२) पयास (३) भूख (४) आश्चर्य (५) पीडा (६) खेद (७) रोग (८) शोक (९) मद (१०) अज्ञान (११) भय (१२) निद्रा (१३) चिंता (१४) पसीना (१५) राग (१६) द्वेष (१७) मृत्यु (१८) ये अठारह दोष भगवान केवली में नहीं होते हैं। ४६ गुणा १८ दोष वर्णन समाप्त ॥

इसके अतिरिक्त अष्ट मगल द्रव्य भी साथ साथ २ ही रहते हैं जिन के नाम चँवर—छत्र—कलश—झारी—स्वास्तिक—दर्पण—ध्वजा पंखा। यह अरिहन्त प्रतिमा के साथ होता अरिहंतो की प्रतिमा की पहिचान है इन का नहीं होना सिद्धो की प्रतिमा का सकेत है जिस पर चिह्न भी नहा होता जो २४ प्रकार के चौबीस तीरथकरो के होते है—

गुणा छतिस पच्चिस आठ बीस भव तारनतरन जिहाज ईस ॥

[आचार्य के ३६ गुण] गुप्ति (३)+समिति (५)+धर्म (१०) तप (१२)+आवश्यक (६)=कुल जोड ३६।

[उपाध्याय के २५ गण] ११ अग चौदह पूर्व के पाठी होने से ही उपाध्याय कहे ११+१४=२५ गुण—

[साधु के २८ मूल गुण] महाव्रत (५)+समिति (५)+इन्द्रिय विजय (५) आवश्यक (६)+भूमि शयन (१)+स्नान त्याग (१)+दिगम्बरत्व (१)+केश लोंच (१) एक बार मर्यादित लघु आहार (१)+खड़े २ आहार (१)+दंत धावन (१)=२८ गुण मुनि साधु के हो गये।

[अनोखी चर्चा] षटकाय

वर्ष—नम का १२०००
वायु काय ३००० वर्ष
तीन इन्द्रिय ४९ दिन
मध्य लोक मे अतिम ६
वाले तँदुल मच्छ की
योजन-चौडाई २५० योजन—

[मुनि श्री भव्य सागर के शब्दों में]

पेशाब की धार चौंप में, धाम धाम विसराय।
मान रहा सुख भोग में अशुचि देह लिपटाय॥

[सम्मूर्च्छन एक इन्द्रिय जीव] मनुष्य के मल मूत्र में और स्त्री पुरुष के मृतक शरीर में भी होते हैं।

[अकृत्रिम चैत्यालय] मध्य लोक में मेरु पर्वत से तेरवें द्वीप तक कुल मिला कर संख्या ४५८ होती है जिनकी प्रतिमायें भी अकृत्रिम अथवा अनादि अनन्त होती हैं वह जिस पुद्गल द्रव्य की है उस द्रव्य को बनाये बिना स्वमेव आकार की प्रतिमा जैसा है—इन के दर्शनमात्र से सम्यक्त की प्राप्ति होना संभव है जिनके दर्शनों का लाभ सम्यग्दृष्टि देव आदि के दिनों में ज्यादि उठाते हैं।

[जो जीव आहार लेते हैं परन्तु उनके निहार (मलमूत्र) का अभाव है] तीर्थंकर—बलभद्र—नारायण—प्रतिनारायण— चक्रवर्ती— युगलिया मनुष्य और तिर्यंच—तीर्थंकर के माता पिता सर्व धारी मुनि—(देव और नारकी मानसिक आहार)।

[कोटि शिला] आठ योजन लम्बी × आठ योजन चौड़ी × एक योजन मोटी होती है—चौथे काल में अब तक नौ नारायण होते हैं जिनका बल धीरे धीरे आयु और अवगाहना के साथ २ घटता रहता है। तो सबप्रथम नारायण शिला को सिर से ऊपर उठा लेता है जब अन्तिम नौवाँ घर के गट्ट तक ही अर्थात भूमि से चार अंगुल ऊंचा ही उठा पाता है। अंतिम नारायण श्री कृष्ण थे जो तीर्थंकर नेम नाथ २२वें के समय में एक ही कुटम्ब के थे।

[जीव की गमन दिशा] कर्म रहित जीव ऊर्ध्व गमन ही करता है। कर्म सहित जीव शरीर छोड़कर विग्रह गति से अर्थात चार दिशाओं में और ऊपर नीचे गमन करता है विदिशाओं में नहीं मध्य लोक का जीव ऊर्ध्व अधोलोक में गमन कर सकता है ऊर्ध्व लोक का जीव अधोलोक में ही जाता है। (देव मर कर देव नहीं बन सकता) नारकी को ऊर्ध्व लोक ही गमन करना पड़ता है अतः नारकी पुनः नारकी

नहीं होता है—

[आवागमन चउभगी] जो जीव नित्य निगोद से व्यवहार राशि में आते रहते हैं वह फिर नित्यनिगोद राशि में नहीं जाते सिद्ध क्षेत्रो में जीवनिरंतर जाते रहते हैं और वहां से पुन संसार में वापिस नहीं आते। अलोकाकाश में न कोई जीव आता है और न कोई वहां जा सकता है वहां धर्म अधर्म द्रव्य का अभाव है। चारों गति में जीवों का आवागमन रहता है किसी गती से किसी में जाने की रोक टोक नहीं है—

[श्वेताम्बर जैन आम्नाय की मान्यता] केवली भगवान के मलमूत्र होता है केवली रोगी भी हो सकते हैं केवली आहार भी लेते हैं—केवली को केवली नमस्कार भी करते हैं। केवली को उपसर्ग भी होता है, तीर्थंकर पाठशाला में पढ़ते हैं। महावीर भगवान देवनन्दा ब्राह्मणी के गर्भ में आये इन्द्र ने वहां से निकाल कर त्रिशला के गर्भ में पहुँचा दिया। शान्तिनाथ भगवान और उनकी स्त्री सुनन्दा युगलिया थी। केवली को भी छींक आती है। गौतम गणधर सच्चे ब्राह्मण मिथ्या सिद्धान्तवादी के घर मिलने गये। स्त्री भी अपनी स्त्री पर्याय से मोक्ष प्राप्त कर सकती है और तीर्थंकर भी बन सकती है जैसे १९वें तीर्थंकर मल्लीबाई स्त्री तीर्थंकर था। मुनिसुव्रतनाथ भगवान का गणधर घोड़ा बताते हैं। धर्म की निंदा करने वाले को मार डालने में पाप नहीं। जुगलिया मर कर नरक भी चले जाते हैं। भरत चक्री ने अपनी ब्राह्मी बहिन को अपने विवाह के लिये रखा भरत जी को घर में ही केवलज्ञान का उपज हो गई। गुरु को चेले के कंधे पर चढ़ने से ही चेले को केवल ज्ञान की प्राप्ती हो गई। जयमाली माली जाति का पुरुष महावीर स्वामी का जामाद था। घात की सड़ में कपिल नारायण को केवल ज्ञान उपजा। मुनि शूद्र के घर आहार ले सकते हैं। त्रिपिष्ट नारायण का जन्म छीपा के घर हुआ। प्राण जाय तो नियम भंग में दोष नहीं। उपवास में औषध लेना विरुद्ध नहीं। मोरा देवी को हाथी पर बैठे २ केवल ज्ञान उपजा। शूद्र जाति ...

हो सकती है। सूय चन्द्र समोशरण म आये। त्यागी के ग्राम विकार की छूती ग्रहस्थी स्त्री म गृह्स्त करे। तीर्थंकर म घटारह दोष रहते हैं। चमडे ए पात्र म रखा जल निर्दोष है। केवली समासरण म वस्त्र सहित होती है। इस जसी चर्चा को स्वेताम्बर भाई अछेरा (बात न करन योग्य) कहत हैं। दिगम्बर आम्नाय के यह चर्चा विरुद्ध है।

[कुवादियों के ३६३ भेद] १८० प्रकार के क्रियावादी + ८४ प्रकार के अक्रियावादी + अज्ञान वादीया क ६७ भेद + विनय वादियों के ३२ भेद— ३६३ जान। यह सभी वादी वाद विवाद म अपन २ विषय क पारंगत होते है जो ऋधिधारी मुनि के अतिरिक्त पराजय नहीं होते यह सभी कुवादी घोर मिथ्या दृष्टि होन के कारण समोशरन मे तो प्रवेश कर नहीं पाते, परन्तु समोशरण के चारों ओर श्रद्धा जमाय रहने का नियम है जो अपनी मान्यता को सिद्ध करने के अवसर म समोशरन मे जाने वालो पर वहका फुसला कर अपना प्रभाव डाल कर भड़काते रहते हैं।

[भ्रम करे एक भुगतें अनेक] उदाहरन—विजय दशमी के दिन रावण का विशाल कलपित रूप बना कर अज्ञान वाला एक व्यक्ति प्रदर्शन का रूप देन है और उस प्रदर्शन को भारी जनसमूह दर्शक के रूप मे देख कर अनुमोदना कर आनन्द का अनुभव करता है ऐसी अनुमोदना करने वाले अनेकानेक जनता पाप बंध करता है। रावण का जीव नरकायुपूर्ण कर भाविष्य तीरथकर होगा जिसके कलपित बुत को जला कर रुचिपूर्वक दृष्य को देखना भाव हिंसा के दोष का महान बंध का कारण है। दीपावली पर तिर्यचो के रूप के खांड के खिलाना का लाकर खाना सपष्ट भाव हिंसा है ऐसे पवित्र जन पर्व पर ऐसा पाप का बंध अप्रशसनीय है—जिस का नियम करना कराना उपयोगी और हिंसा से बचने का कारण होगा।

[पदवीधर ११ रुद्र और नौ नारायण का अनोखा नियम]

[११ रुद्र] इन का जनम नियमित भ्रष्ट मुनि अर्जिका के संयोग से ही होता है। तपस्वी वीर्य के संस्कार के कारण ये महा पराक्रमी, महा तेजस्वी, विद्यानुवाद नाम के दसों पूर्व के पाठी तपस्वी ग्रहत्यागी, भव्य और

सम्यग्दृष्टि होते हैं परन्तु पंचेन्द्रिय के विषय की तीव्र लालसा में फंस कर भ्रष्ट हो जाते हैं जिस कारण नियमपूर्वक नरक में ही जाते हैं परन्तु कालांतर में मोक्ष जाना निश्चय है।

[नौ नारद] यह नारद नारायण के समय में ही होते हैं और इनका नारायण पर प्रचुर प्रेम भाव होता है। ये बाल ब्रह्मचारी आकाशगामिनी विद्या के धारक ढाई द्वीप में सभी स्थानों में विचरने वाले होते हैं। परन्तु कलह-प्रिय होने के कारण सीधे नरक में जाने का नियम है फिर भी अन्य भव धारण कर मोक्ष प्राप्त करेंगे—ये सभी पदवी धारक नारद का जन्म अन्य मती तापस तापसनी के संयोग से ही होने का नियम है।

[साम्य की विचित्रता] प्रथम स्वर्ग का इन्द्र जम्बू द्वीप को पलट सकता है। सर्वार्थसिद्धि के अहमिन्द्र तीनों लोक को उलट पलट कर सकने में समर्थ है—परन्तु इन को मन्द कषाय एवं भाव उत्पन्न नहीं होने देता तारतम्य से सर्वार्थसिद्धि के अहमिन्द्रो में अनन्त गुण कम होता है। ऋषिपात मुनि में भी अहमेन्द्र से अधिक बल होता है—परन्तु मन्द कषाय होने के कारण इनके भाव कभी भी क्लेश उत्पन्न करने नहीं उपजते।

[विदल का स्वरूप] कच्चे दूध छाछ दही में साथ दो दालें होने वाले अन्न का जिमाया की राल की निमित्त मिलने से सम्मूर्छन जीवों की उत्पत्ति तुरन्त हो जाती है इसलिए द्विदल खाने में अभक्ष के समान पाप होता है।

[१६ सतियों के नाम] (१) ब्राह्मी (२) चन्दन बाला (३) राजुल (४) कौशल्या (५) मृगावती (६) सीता (७) सुभद्रा (८) [illegible] (९) सुनसा (१) कुन्ती (११) शीलावती, (१२) दमयन्ता (१) चूला (१४) प्रभावती (१५) शिवा (१६) पद्मावती—इनके अतिरिक्त मैना सुन्दरी+अजना आदि शील महिमा में परम विख्यात हुई हैं—

[१२ प्रसिद्ध महापुरुषों के नाम] (१) कुमारपाल में शान्ति राजा, (२) दानियों में राजा श्रेयांस (३) तपस्या में बाहुबलि (४) भावना का गूढ़ता में भरत चक्रवर्ती, (५) बलदेवों में श्री रामचन्द्र (६) काम देवों में हनुमान

(७) सतिया म माता जी, (८) मानिया रावण, (९) नारायणों मे कृष्ण, (१०) ग्गा म महादेव (११) बलवाना म भीम (१२) तीर्थंकरों में पार्श्वनाथ जी—यह बहुत प्रसिद्ध हो गये हैं।

[पू० मुनि श्री भय सागर जी के रचित दोहे]

जगे ज्वर के वेग सा भाजन की रुचि जाय।
तसे कुवम क उदय धम वचन न सुहाय ॥
लगे भूख ज्वर के गय रुचि सो नय ग्रहार।
अशुभ गय शुभ क जगे जावे धम विचार ॥
निम्बाम्लिक चन्दन करं मन्या चल को वास।
दजन हो सज्जन भय भव्य भव्य के पास ॥
चम्पा तुभ म तीन गुण रूप रग ग्रह बाग।
ग्रोगुण तुझ म एक है भवर न ग्रावे पास ॥
भव्य चरणा म बठ कर उपज समता भाव।
पीछि कमण्डल कब धरू ऐसा मन म चाव ॥

[अरिहन्त प्रतिमा और सिद्ध प्रतिमा मे अन्तर] आठ प्रातिहार्य अष्ट मगल द्रव्य होना अरिहत प्रतिमा का चिह्न है—इन का नहीं होना सिद्ध प्रतिमा का सकेत होगा सिद्ध प्रतिमा स्फटिक मणी की बनवाना कल्याणकारी होगा—

[वीर वन्दना] (युग वीर भारती से)

जीत भय उपसग परीषह जीते जिन न मन को मार
जीती पचेन्द्रियाँ जिह्वा ने औ क्रोधादि कषायें चार।
राग द्वेष कामादिक जीते, मोह-शत्रु के सर्व हथियार
सुख-दुख जीते उन वीरो को नमन करू मैं बारम्बार ॥

(१) दूध निकालें साग छुड़ाकर बच्चे को पीते पीते,
है उच्छिष्ट अनीती लभ्य या योग्य तुम्हारे नहीं दीख ॥

—०—

दही घृतादिक भी वश हैं कारण उनका दूध यथा,
(२) पुष्पों का भ्रमरादिक सूंघ क भी है उच्छिष्ट तथा।
दीपक तो पतंग-का नाशक जनत जिन पर कीट सदा
त्रिभुवन-पूज्य ! आप को अथवा दीप दिखाना नहीं भला॥

—०—

फल मिष्ठान्न अनेक यहाँ पर उन में ऐसा एक नहीं,
(३) मल प्रिय मक्खी ने जिस को आकर प्रभुवर ! छुआ नहीं।
या अपवित्र पदार्थ अरु फिर तू पवित्र सब गुण-गेह,
किस विधि पूजूं ? क्या कि चढ़ाऊँ ? चित्त डोलता है [illegible]॥

— —

(४) औ, आता है ध्यान—तुम्हारे क्षुधा तृषा का [illegible] नहीं
नाना रस-युत अन्न-पान का अत प्रयोजन रहा नहीं।
नहि वाञ्छा विनोद भाव ना नहि राग अश का [illegible]
इस स व्यर्थ चढ़ाना होगा औषध-सम जब [illegible]।

—०—

(५) यदि तुम कहो रत्न भूषण-वस्त्रादिक [illegible]
अन्य-सदृश पावन हैं अर्पण [illegible]
तो तुमने निःसार समझ जब [illegible]
हो वैराग्य-लीन-मति स्वामिन् ! [illegible]

—०—

(६) तब क्या तुम्हें चढ़ाऊँ वे ही, [illegible]
होगी यह तो प्रकट अमलता [illegible]।

मुझे पृष्टता दीस अपनी और अयद्धा बहुत बड़ी,
इस तथा सत्यक वस्तु यदि तुम्हें चढ़ाऊँ धड़ी घड़ी ॥

—०—

(७) इस म युगल हस्त मस्तक पर रख कर नमी भूत हुआ
भक्ति-सहित मैं प्रणमू तुम को बार बार गुण-लीन हुआ।
सस्तुति शक्ति-समान करूँ मो सावधान हो नित तेरी
काय-वचन की यह परिणीत हो अहो ! द्रव्य पूजा मरी ॥

—०—

(८) भाव भरी इस पूजा से ही होगा आराधन मेरा
होगा तय सामीप्य प्राप्त मो सभी मिटेगा जग-फेरा।
तुझ म मुझ म भेद रहेगा नहिं स्वरूप से तब कोई
ज्ञानानन्द-कला प्रकटेगी थी अनादि स जो सोई ॥

—०—

[भोग भूमि म अभाव] सभी प्रकार के असनी जीव और जलचर विकलत्रय स्थावर इतनी प्रकार क जीवो का भोग भूमि म अभाव होता है।

[दश प्राण] पचन्द्रिय सनी (मनसहित) जाव क दश प्राण होते हैं (५)इन्द्रिय +(१) मनोबल+(१) वचनवल+(१) कायबल (१)+श्वासश्वास +(१) आयु=१ प्राण हुये १ २ ३ ४ ५ इन्द्रि असनी जीवो म पूरे १० प्राण नहीं होते हैं।

[ध्यान १६ प्रकार] (४ आर्तध्यान)+(४ रौद्रध्यान)+(४ धर्मध्यान)+ (४शुक्लध्यान) कुल १६ होते हैं आर्तध्यान वाले जीव को इस ध्यान क फलस्वरूप तिर्यचगति का बध होता है रौद्रध्यान के फलस्वरूप नरक-गति मिलती है धर्म ध्यान स मनुष्य तथा देव गति—शुक्ल ध्यान तो पचम उत्कृष्ट गति को देने हारा है ऐसा समझकर आर्तध्यान रौद्र ध्यान स बचना ही उत्तम होगा।

—ओ३म् श्री वीतरागाय नम —

प्राचीन चर्चा सागर ग्रंथ अप्राप्य होने स उसकी कुछ चर्चाओं का उल्लेख कर देना आवश्यक जान मैंने इस चर्चा सागर ग्रथ राज क दर्शन,परम पूज्य मुनि श्री

१०८ युगल मुनियों के पास कर के मेरे मन में इस ग्रंथ को स्वाध्याय करने के भाव बड़ी उत्सुकता से उत्पन्न हुये—तो ऐसे भाव प्रगट करते ही पूज्य मुनि श्री ने मेरे स्वाध्याय करने हेतु अपनी आज्ञा दी जब वे यह शास्त्र उनके पास किसी जौहरी के द्वारा लिया हुआ था फिर भी मेरी प्रचुर भावना देख सहर्ष ले जाने की आज्ञा दी जिस में से कुछ चर्चाओं का उल्लेख इस छोटी-सी पुस्तक में कर रहा हूं साधर्मी भाई प्रमपूर्वक पढ़ कर लाभ उठावें—

चर्चा नं० ४—तीर्थंकर भगवान दीक्षा के समय सोलह वर्ष की अवस्था वाले पुरुष के समान बिना मूंछ दाढ़ी के केवल सिर के बालों का केश लौंच करते हैं जिसे पंचमुष्टि लोंच कहा गया है—तीर्थंकर भगवान के मूंछ दाढ़ी होने का अभाव कहा है। इन के अतिरिक्त चतुर्णिकाय के देव, नारकी जीव भोग भूमियों चक्रवर्ती तीर्थंकर नारायण बलभद्र और काम देवों के मुख पर मूंछ दाढ़ी के बाल होते ही नहीं है। इन की आयु पर्यंत नव यौवन अवस्था ही बनी रहती है नारकी को छोड़ कर सभी के सिर पर भी बाल—इतने ही बढ़ने पाते हैं—जिन को कटवाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा के मूंछ दाढ़ी के बालों को दिखाने का निषेध है।

[चर्चा १८ वीं पष्ट १६ वाँ] श्री ऋषभ देव की दिव्य ध्वनि सत्र से पहिले बिना गणधरों के खिरी यहहुंडावसर्पिणी काल का दोष है—और इन के पुत्रि संतान हो गई यह भी निषेध है तीर्थंकरों के पुत्र संतान ही होती है सर्वप्रथम पुत्री संतान का होना भी काल का ही दोष जानों।

[चर्चा २२ वीं] (माला के भेद) सूत की माला सुख देने वाली होती है, लकड़ी रुद्राक्ष की मालायें अयोग्य है महान उपयोगी तो सोना-चांदी मूंगा-मोती की माला होती है जो हजारों उपवासों का फल देने वाली है क्रिया कोष में ऐसा लिखा है—

माला के भेद

धमरसिक ग्रंथ में लिखा है—लाल वस्त्र का आसन श्रेष्ठ और डाभ का आसन सब कार्यों की सिद्धि करने वाला होता है इसके अतिरिक्त अनेक

प्रकार क आसनो पर बैठ कर जाप माला जपना दुख का कारण होता है—

[चर्चा २६ वी] घर म जाप करने का फल एक गुणा वन म करने का सौ गुणा—बाग म सहस्र गुणा—जिन मन्दिर म कोड गुणा—भगवान जिनेन्द्र देव के समीप साक्षात्कार कर कर अनन्त गुणाफल होता है—

[जाप करने का विधान] मोक्ष प्राप्ती के लिये अ गूठे से और पारिक कार्यो म तर्जनी अंगुली से, किसी ग्रह के उपद्रव वा शान्ति के लिए अनामिका उगली से आह्वानन के लिये कनिष्ठा उगली म शत्रु के नाश वास्ते तर्जनी उगली धनसम्पदा के लिये मध्यमा उगली, शान्ति के लिये अनामिका से सब कार्यो की सिद्धि के लिये कनिष्ठा से जाप करना चाहिये—यह अलग २ उगलियो स जप करने का फल बताया।

[चर्चा ४६ वीं] जिस शरीर से केवली भगवान सिद्ध मुक्त होते हैं उस शरीर का तीसरा भाग कम हो जाता है २ भाग प्रमाण सिद्धो की अवगाहना रहती है। जैसे तीन धनुष वाले शरीर की अवगाहना २ धनुष रह जाती है। ऐसा सिद्धान्त सार प्रदीप म लिखा है।

[चर्चा ५३ वीं] स्वयभू रमण समुद्र म शालिसिक्थ नाम का मत्स्य अपने शरीर से कोई हिंसा आदि पाप नहीं करता है। केवल ऐसे पाप का मन से चिन्तन करता है और ऐसे मानसिक पाप से हिंसा किये बिना भी वह नियम स सातवें नरक ही जाता है। बाह्य हिंसा के बिना पाप का— कारण—सब से बडा तदुल मत्स्य होता है जिस को नाक मुह से सांस लेते छोड़ते समय हजारो मछलियां पेट म जाती है और वापिस आती रहती हैं। सो इस तदुल मत्स्य की आँख की पलक पर या कान म एक छोटा शालिसिक्थ नाम का मत्स्य बना २ उन हजारो मछलियो को आते जाते देख कर बडे मत्स्य को मूर्ख कहता है जो पेट म मछली जाती है उनको बाहर भी आने देता है—इसकी जगह म होता तो एक भी अन्दर गई मछली को बाहर नहीं आने देता बस इसी मानसिक पाप के कारण सीधा सातवे नरक म जाता है। जब के किसी को भी हानि नहीं पहुँचाता है। केवल मन के सकल्प विकल्पो से नहीं बचता महा पाप है।

[इस गिर राज की यात्रा का विशेष महात्म]

सफेद कपडे म यात्रा करना निकट मोक्ष प्राप्ति—पीले वस्त्र स भने रोगा का नाश—हरे वस्त्र स मानसिक पीड़ा शोक सताप का नाश—ला रग से लक्ष्मी धन प्राप्ति—ऐसा लोहाचाय विरचित—सिखर विलास कहा है—जिसम काई सँशय नही है—ऊनीवस्त्र स यात्रा असफल है।

[१३७वीं चर्चा] जिनेंद्र भगवान की पूजन करने की शास्त्र आना वेद पूव—उत्तर दिशा की ओर मुह कर क ही है अन्य दिशाओं में मुख क र पूजन करना अशुभ ही नहीं अनथ का कारन होना है।

पश्चिम का और मुख करक चाहें भगवान के सम्मुख भी हो इस दि म खड होकर पूजन करन का फल पूजक की सँतान का नाश करता है- दक्षिण की ओर मुख करक पूजन करने वाले की सतति का अभाव हो है। उसके औलाद उत्पन्न नहीं होती—पश्चिम दक्षिण की कोण म मु करके पूजन करने वाल का प्रति दिन धन का हानि होती है। उत्तर पश्चि की कोण म मुख करन वाल की भी सतान नहा होती। पूव उत्तर की का म मुख कर क पूजन करने वाले का दुर्भाग्य हो सौभाग्य को नष्ट करत है। यहा तक लिखा है अगर किसी कारण वश उत्तर पूव दिशा की ओ पूजन करने की विधि नहीं बने तो पूजन ही नहीं करना चाहिये ऐसा श्री उमस्वामि ने अपन श्रावकाचार म लिखा है—

[१३८वा चर्चा] पूजा खडे होकर करना ही विनय का मूल है बठ कर पूजन करना जिन वचन का विरोध है जिस का अग मिथ्यात्व है तीनों लोक के भगवान की पूजा बठ के करना अविनय और अनय होन का कारन है एसा उमास्वामि उपासकाचार म वणन है। पूव दिशा की ओर मुख करके पूजन करन से शांति पुष्टि होना है उत्तर का ओर मुख कर पूजन करन वाल का धन की वृद्धि होती है और सब प्रकार कल्याण कारी है।

[१४२वीं चर्चा] फटे पुराने मलिन वस्त्र पहिन कर जप तप पूजन स्वाध्याय करना म मय फल दायक नही है परतु सब कुछ व्यय जाता है और अमगलीक है।

[अघ्रनिवदन] पुस्तक म जो कुछ लिखा लघु बुद्धि अनुसार।
भूल चूक त्रुटि होय तो बुधजन करो सुधार।
ओ३म् शान्ति शान्ति, शान्ति

निर्जरा भावना

निज काल पाय विधि झरना तासों निजकाज न सरना ।
तपकरि जो करम खिपावै सोई शिवसुख दरसावै ।।११

लोक भावना

किनहू न करै न धरै को षटद्रव्यमयी न हरै को ।
सो लोकमांहि बिन समता दुख सहै जीव नित भ्रमता ।।१२

बोधि दुर्लभ भावना

अन्तिम ग्रीवकलौं की हद, पायो अनन्त बिरियां पद ।
पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ दुर्लभ निजमें मुनि साधौ ।।१३

धर्म भावना

जो भाव मोहतें न्यारे-दृग-ज्ञान व्रतादिक सारे ।
सो धर्म जबै जिय धारै तब ही सुख अचल निहारै ।।१४

मुनि धर्म

सो धर्म मुनिनकर धरिये, तिनकी करतूत उचरिये ।
ताकों सुनिये भवि प्रानी अपनी अनुभूति पिछानी ।।१५

श्री जिन वाणी माता की जय

कविवर पं० द्यानतरायजी स्वतन्त्र द्वारा विरचित

० श्री लाक्षणिक धर्म (सवैया) ०

मङ्गलाचरण

पंच जिनंद धरूँ मन में जिन नाम लिये सब पातक भाज ।
शारद माय प्रणाम करूँ जिन हस्त कमंडल पोथि विराज ।।
गौतम पाँय नमूं मन शुद्ध सुधर्म उपंग बखान ही साज ।
सद्गुरु को उपदेश सुन्यो हम धर्म सदा दशलक्षण साज ।।

(१) उत्तम क्षमा

कवल एक क्षमा बिन हा सब संयम शील अकारथ जानो ।
पाक सुपाक विक्षमा सुधरो जिम लून विहीन अनाज को मानो ।।

(७) उत्तम तप

दुधर तप गिरीद्र गिरावन वज्र समान महा तप ऐसो।
बारह भेद भनन्त जिनेश्वर पाप पखालन पानिय जैसो॥
दुःख विहंडन सुक्ख समर्पण पंचहि इन्द्रिय रक्षण तैसो।
ज्ञान कहे तपस्या विन जीव जु मो र पन्थ पावन कैसो॥

(८) उत्तम त्याग

दान बड़ा जग में नर को शुभ दान से मान लहे जग मानव।
भूप दयाल होय सबही अरि मित्र होय भय सकल दानव॥
दान से कीर्ति बढ़ जग भीतर दान समान न और बड़ा नव।
ज्ञान कहे भव पार उतारन दान चतुर्विध सार कहे तव।

(९) उत्तम आकिञ्चन्य

आलस भग में दूर जु करके नाम अकिंचन धर्म धरावो।
जान जजाल तजो घट में मन शुद्ध करो ममता घर आवो॥
जाप व तीप करा फल इच्छित भूल भये फल किंचित पावो।
ज्ञान कहे नर कू सुख दायक शुद्धि मन ते अकिंचन ध्यावो॥

(१०) उत्तम ब्रह्मचर्य

शील सदा नर को सुखदायक शील समान बड़ो नहिं कोई।
शील हित पावक शीतल जल जानकि कूँ जग देखत होई॥
सेठ सुदर्शन शूलि सिंहासन शीलहित भव मायन दोई।
ज्ञान कहे नर सोहि विचक्षण जो नर पालत शील समोई॥

।। श्री दश लक्षण धर्म समाप्त ।।

प्रकाशक की हार्दिक भावना —

घर कर दिगम्बर रूप कब, अठवीस गुण पालन करूँ।
द्वेवीस परिषह विजय कर शुभ धर्म ध्यान धारण करूँ॥

—प्रकाशक पन्नालाल जैन

मुद्रणालय रसिक प्रिंटर्स, ६-बी प्रहलाद मार्कीट, नई दिल्ली ५।